© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 11 Issue: 02 | April - June 2020
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

प्राचीन भारतीय वांग्मय में शिक्षा : सन्दर्भ एवं निहितार्थ

डॉ अमित कुमार जायसवाल,
एसोसिएट प्रोफेसर, (बी. एड. विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार, उत्तराखंड
E mail- Jaiswalamit1318@gmail.com

सारांशिका

आज जबकि इक्कीसवीं सदी में सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान, विज्ञान, संचार तकनीक, अंतरिक्ष ज्ञान अपने चरमोत्कर्ष पर है |तथापि शैक्षणिक संस्थानों से लेकर सम्पूर्ण समाज में युवाओं में कुंठा, निराशा, हताशा, अवसाद व्याप्त है | ऐसे में युवा नशे और अपराध के साथ ही आतंक में लिप्त होकर कुपथगामी बन जाए, तो कोई आश्चर्य नहीं | भौतिकता की अंधी में हम वेदों, उपनिषदों, गीता के वचनों को भूलते जा रहे हैं फलस्वरूप सम्पूर्ण जगत में घोर कलह, ईर्ष्या, आतंक व्याप्त है| सर्व श्रेष्ठ बनने की होड़ मची हुई है, चाहे मनुष्यता की बलि देकर ही| महर्षि दयानंद और स्वामी विवेकानंद जैसे युगपुरुषों ने शायद इसीलिए वेदों और उपनिषदों के अध्ययन पर जोर दिया था | जिससे मनुष्यता बची रहे | विभिन्न भारतीय शिक्षा आयोगों व समितियों के प्रतिवेदनों, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी संस्कृत साहित्य और प्राचीन भारतीय शिक्षा पर फोकस किया है | अस्तु इस शोध पत्र के माध्यम से प्राचीन भारतीय वांग्मय में सन्निहित शिक्षा एवं उसके स्वरुप को पुनः उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है, जिससे युवा और विद्यार्थी पुस्तकीय शिक्षा के अतिरिक्त शिक्षा का वास्तविक अर्थ ग्रहण कर सकें और स्वयम को अनुशासित कर राष्ट्र निर्माण में सहभागी बन सकें |

मुख्य शब्द :भारतीय वांगमय, शिक्षा,वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य

शिक्षा क्या है?

भारत वर्ष के ऋषियों मुनियों ने भौतिक, आध्यात्मिक उत्थान एवं अन्य उत्तरदायित्वों के विधिपूर्ण निर्वहन के लिए शिक्षा की महती आवश्यकता को सदैव स्वीकार किया है | प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति ने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को चार हजार वर्षों से भी अधिक समय तक न केवल सुरक्षित रखा अपितु इसका प्रचार प्रसार एवं उत्थान भी किया | (अल्तेकर, ए, एस, 1944)[1]

शिक्षा शब्द का प्रयोग " ***शिक्षा विद्योपादाने*** '' धातु से विद्या ग्रहण अर्थ में भारतीय शास्त्रों में किया गया है (धातु, पाठ- 13-1), अर्थात प्राणी जिस साधन प्रणाली से ज्ञान अर्जित करता है, उसी का नाम शिक्षा है | शिक्ष धातु से 'अ' और टाप प्रत्यय द्वारा व्युत्पन्न शिक्षा शब्द सफल मानव जीवन के लिए अपेक्षित सभी

चतुर्दश विद्याओं का वाचक है | जिसका उद्देश्य इस जगत में सर्वांगीण अभ्युदय और परलोक में परम निःश्रेयश की प्राप्ति कराना है | ***यजुर्वेद में आध्यात्मिक*** ज्ञान को ही '***विद्या***' से अभिहित किया गया है | भारतीय मनीषियों एवं चिंतकों ने वैदिक युग से ही शिक्षा को ऐसे प्रकाश का स्रोत माना है,जो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को प्रकाशमान करता आया है | जहाँ ज्ञान को तीसरा नेत्र बताया गया है |

विद्या ही मनुष्य की सबसे बड़ी सुन्दरता है | यही उसका रत्नगर्भा धन है | विद्या ही भोग विलास देने वाली, यश व सुख देने वाली तथा गुरुओं की भी गुरु है | विदेश में विद्या ही मित्र बनती है , विद्या ही परम देवता है | राजाओं के बीच विद्या ही पूजी जाती है, धन नहीं पूजा जाता | विद्या विहीन मनुष्य पशु के सामान है |**(भर्तृहरि, 2012)**[2] विद्या ही मनुष्य का सच्चा आभूषण है |**(भर्तृहरि, 2012)**[3]

भारतीय शिक्षा प्रणाली के आदर्श वाक्य के रूप में वेद का अनुशासन है – '***विशेष ज्ञानी – ज्ञानामृत में प्रतिष्ठित व्यक्ति अज्ञानियों में बैठकर उन्हें ज्ञान प्रदान करें | (ऋग्वेद)***[4]

शिक्षा को वेद पुरुष की नासिका कहा गया है, "***शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य***|" इस शिक्षा का उल्लेख वेदांग में भी किया गया है – " ***शिक्षा कल्पोऽथ व्याकरण निरुक्तः छन्दसां गतिः*** |"वेदांग में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है| इस बात का अनुमान मुण्डकोपनिषद की वेदांग सूची में शिक्षा के प्रथम उल्लेख से लगाया जा सकता है | वेद पुरुष का यह घ्राण स्थानीय है | **सायण के शब्दों** में –***स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा*** | तात्पर्य यह कि शिक्षा वस्तुतः ध्वनि विज्ञान है, जिसके अंतर्गत वर्णों, स्वरों, मात्राओं, उच्चारण स्थानों तथा उच्चारण प्रकारों का विवेचन है | यज्ञों में तथा अन्यत्र स्वाध्याय, पारायण आदि में भी पूर्णफल के लिए मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण पर विशेष बल दिया जाता था |

शिक्षा के लक्ष्य ज्ञान– विज्ञान एवं दर्शनों से आत्मा में एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न करना विद्या है | ***"विद्यास्ति ज्ञान विज्ञान दर्शनः संस्क्रियात्मानि || ब्रह्मसमन्वय||"***

ईशोपनिषद यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय है, जो परा व अपरा ***ब्रह्म–विद्या का मूल*** है| अन्य सभी उपनिषद् उसी का विस्तार हैं |ईशोपनिषदमें कहा गया है कि ***विद्या से अमरत्व की प्राप्ति होती है | विद्यांचाविद्यां च यस्तद्वेवेदोभयं सह |अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते || अन्धं तमः प्रवशन्ति ये विद्यामुपासते \ ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः \\11 (*** ईशोपनिषद)[5],

अतः जो विद्या व अविद्या अर्थात ज्ञान व कर्म दोनों को साथ साथ जानता है एवं दोनों के समन्वय से कर्मों में प्रवृत्त रहता है वह कर्म से संसार में उचित व सुकृत्य रूप से प्रवृत्त होकर संसार सागर में तैरकर मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है एवं विद्या अर्थात ज्ञान के मार्ग में प्रवृत्त होकर सत्कर्मों द्वारा अमरता को प्राप्त होता है |***मनुस्मृति में वर्णन***

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 11 Issue: 02 | April - June 2020
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

है कि आत्मा को सुसंस्कृत करना ही शिक्षा है | (मनुस्मृति)[6]**वेद व्यास शि**क्षा के सन्दर्भ में कहते हैं – ***शास्त्रयोनित्वात (वेदांत सूत्र 1 /1 /1***) अर्थात भगवान् के स्वरुप निर्णय में शास्त्र ही प्रमाण है |

मुंडकोपनिषद में विद्या के दो प्रकार माने गए हैं –**परा विद्या** और **अपरा विद्या** |**परा विद्या** से तात्पर्य स्वयं को जानने (आत्मज्ञान) या परम सत्य को जानने से है। उपनिषदों में इसे उच्च स्थान प्राप्त है। दूसरी विद्या **अपरा विद्या** है। ***मुंडकोपनिषदके*** प्रथम मुण्डक के प्रथम खंड मेंविद्या के सन्दर्भ में विशद वर्णन आया है| जिसमे प्रसिद्द सद्गृहस्थ शौनक ने अंगिरसऋषि के पास जाकर शिक्षार्थी के रूप में विद्या के बारे में विधिपूर्वक पूछा है | **वर्णन है** कि–***शौनको ह वै महाशालो अनिरसम विधिवदुपसनः पप्रच्छ| कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति\\3***[7] ***'किसके जान लेने पर यह सब कुछ जान लिया जाता है'***|

इस के प्रत्युत्तर में अंगिरस ऋषिने शिक्षा शब्द का वृहद् अर्थ बताते हुए कहा है –***"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते"***|**4 ||**[8]अंगिरस ऋषि ने शौनक को उत्तर दिया – ब्रह्मवेत्ताओं ने ब्रह्मविद्या के अंतर्गत दो विद्याएँ जानने योग्य बताई हैं – एक **परा विद्या** और दूसरी **अपरा विद्या** | (मुण्डकोपनिषद, संवत 2072)। परा विद्या वह है जिसके द्वारा ज्ञान को 'अनश्वर' (नष्ट न होने वाला) जाना जाता है अर्थात वह विद्या जो स्मृति में आने के बाद कदापि न भूली जाए। जबकि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष अपरा विद्या हैं। उपनिषद् में अपरा विद्या को निम्न श्रेणी का मान गया है। मुण्डकोपनिषद (1/1/4) के अनुसार विद्या दो प्रकार की होती हैं –

1) परा विद्या (श्रेष्ठ ज्ञान) जिसके द्वारा अविनाशी ब्राह्मतत्व का ज्ञान प्राप्त होता है (*सा परा, यदातदक्षरमधिगम्यते*),
2) अपरा विद्या के अंतर्गत वेद तथा वेदांगों के ज्ञान की गणना की जाती है।

मुंडकोपनिषद में मुण्डक शब्द का अर्थ बताया गया है –***मन का मुंडन कर अविद्या से मुक्त करने वाला ज्ञान***|

विष्णु पुराण में **18 विद्याएँ** गिनाई गयी हैं–*अङ्गानि चतुरो वेदाः मीमांसा न्यायविस्तरः ।पुराणं धर्मशास्त्रञ्च विद्याः हि एताः चतुर्दशाः ॥ २८ ॥आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः ।अर्थशास्त्रं चतुर्थन्तु विद्या हि अष्टादशैव ताः ॥ २९ ॥(छः वेदांग , चार वेद, मीमांसा, न्याय , पुराणऔर* धर्मशास्त्र– *ये ही चौदह विद्याएँ हैं ॥ २८ ॥ इन्ही*

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 11 Issue: 02 | April - June 2020
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

में आयर्वेद, धनुर्वेद *और गान्धर्व इन तीनों को तथा चौथे* अर्थशास्त्रको *मिला लेने से कुल अठारह विद्या हो जाती हैं॥ २९ ॥)*

इसी प्रकार 'लोकनीति' नामक पाली ग्रन्थ में १८ विद्याएँ गिनाई गयीं है, जो कुछ भिन्न हैं–

सुति सम्मुति संख्या च, योगा नीति विसेसिका ।गंधब्बा गणिका चेव, धनुबेदा च पुरणा ॥
तिकिच्छा इतिहासा च, जोति माया च छन्दति ।हेतु मन्ता च सद्दा च, सिप्पाट्ठारसका इमे ॥

(श्रुति, स्मृति, सांख्य, योग, नीति, वैशेषिक, गंधर्व (संगीत), गणित, धनुर्वेद, पुराण, चिकित्सा, इतिहास, ज्योतिष, माया (जादू), छन्द, हेतुविद्या, मन्त्र (राजनय), और शब्द (व्याकरण) – ये अठारह शिल्प (विद्याएँ) हैं।)[9]

विद्या लौकिक और पारलौकिक समस्त सुखों को देने वाली है | इस तरह इसे गुरुओं का भी गुरु माना गया है | ***केनोपनिषद***में शिक्षा का समानार्थी विद्या शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ ब्रह्मज्ञान प्राप्ति है |[10]***तैतरीयोपनिषद्*** में वर्णन है कि ***–वर्णः स्वरः / मात्र बलं / साम संतानः \ इत्युक्तः शिक्षाध्यायः/ (प्रथमा वल्ली) द्वितीयोऽनुवाकः /***जिससे वर्णादि का उच्चारण सीखा जाए उसे शिक्षा कहते हैं, अथवा जो सीखे जाएँ वे वर्ण आदि ही शिक्षा हैं | शिक्षा को ही ***शीक्षा***कहा गया है**| यह वैदिक प्रक्रिया अनुसार ही है |**[11]

उपनिषद् का बल परा विद्या के उपार्जन पर है। चारों वेदों– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद एवं छ: वेदांगों –शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, छंद एवं ज्योतिष के अनुशीलन का अभीष्ट फल क्या है? केवल बाह्य और नश्वर (नष्ट होने वाली) वस्तुओं का ज्ञान, जो आत्म–तत्व की जानकारी में किसी भी तरह सहायक नहीं होता। छांदोग्य उपनिषद् में नारद–सनत्कुमार–संवाद में भी इसी पार्थक्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। मंत्रविद् नारद सकल शास्त्रों में पंडित हैं, परंतु आत्मविद् न होने से वे शोकग्रस्त हैं। *मन्त्रविदेवास्मि नात्मवित्...रिति शोक–मात्मवित्* (श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम् ,1–1–6)। अत: उपनिषदों का स्पष्ट मंतव्य है कि अपरा विद्या का अभ्यास करना चाहिए जिससे इसी जन्म में, इसी शरीर का आत्मा से साक्षात्कार हो जाए।

अभ्युदय और भौतिकता, अविद्या के समानार्थी हैं। इसी प्रकार निःश्रेयस और आध्यात्मिकता विद्या के पर्याय हैं। ईशोपनिषद् में उपलब्ध एक मंत्र का अंतिम वाक्यांश निम्नलिखित है – ***"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह, अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते"*** **(ईशोपनिषद–श्लोक–**11)। इसका शाब्दिक अर्थ यह है कि जो विद्या और अविद्या, दोनों का जानकार हैं, वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 11 Issue: 02 | April - June 2020
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि– ***ॐ असतो मा सद गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय| मृत्योर्मामृतं गमय | ॐ शांतिः शांतिः शान्तिः |****मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अविद्या रुपी अन्धकार से ज्ञान रुपी प्रकाश की ओर ले चलो |*[12] ***अथर्ववेद के भी अष्टम काण्ड के आठवें श्लोक में वर्णित है कि – (***अविद्या) अन्धकार से निकलकर (ज्ञान) प्रकाश की ओर बढ़ो |

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा है कि– 'विद्या बिनु विवेक उपजाएँ | श्रम फल पढ़ें किये अरू पाए |[13]

महाकवि कालिदास ने भी **रघुवंशम महाकाव्य** में लिखा है –***विद्यामभ्यसनेनैव प्रसादितुर्म्हसि***/अर्थात मात्र पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कर लेना ही अपने आप में कोई अर्थ नहीं रखता | विद्यार्जन के पश्चात अधीत ज्ञान के सतत अभ्यास की भी आवश्यकता होती है | (रघुवंश, 1 .88)[14]

वैदिक साहित्य के अतिरिक्त लौकिक साहित्य में भी विद्या की संकल्पना की गई है | लौकिक साहित्य के अग्रणी ग्रन्थ हितोपदेश में द्वितीय श्लोक में ही हितोपदेश की महत्ता बताते हुए लिखा है कि– यह हितोपदेश नामक ग्रन्थ भली भांति सुनने पर संस्कृत वचनों में निपुणता, सर्वत्र उक्ति वैचित्र्य एवं नीतिशास्त्र का ज्ञान प्रदान करता है | आगे चौथे श्लोक में वर्णन है कि विद्याधन सभी धनों में श्रेष्ठ है क्योंकि न तो इसे चोर चुरा सकता है और न ही व्यय करने से यह घटता है | (हितोपदेश 1. 4)[15]

अन्यत्र छठे श्लोक में (***विद्या ददाति विनयं.....)***उल्लिखित है कि विद्या मनुष्य को विनय प्रदान करती है, विनय से पात्रता मिलती है, पात्रता या योग्यता से धन की प्राप्ति होती है, धन से धर्म कार्य सिद्ध होते हैं और इसके पश्चात् मनुष्य सुख का उपभोग करता है | यह भी वर्णन है कि अभ्यास न करने से विद्या विष के समान हो जाती है, (***अनभ्यासे विषं विद्या***) | (हितोपदेश 1– 23)

आचार्य भर्तृहरि ने भी अपने ग्रन्थ नीतिशतकम में उद्धृत किया है कि – '***येषाम न विद्या, न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणों न धर्मः, ते मर्त्यलोके भुवि भार भूताः, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति*** || अर्थात जिन मनुष्यों के पास न तो विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न विनम्रता है, न ही गुण है और न ही वे धर्म में रत हैं| ऐसे लोग इस धरा पर भार स्वरुप हैं और मनुष्य रूप में हिरन की तरह विचरण कर रहे हैं | नीतिशतकम में आगे उल्लेख है कि **विद्या विहीन व्यक्ति पशु के समान है | (|** नीतिशतकम –20)भारतीय विज्ञआचार्यो ने विद्या के चार भाग बताए हैं – आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। इनमे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को

त्रयी कहते हैं। वार्ता का अभिप्राय अर्थशास्त्र से है। आन्वीक्षिकी का अर्थ है – प्रत्यक्षदृष्ट तथा शास्त्रश्रुत विषयों के तात्त्विक रूप को अवगत करानेवाली विद्या। इसी विद्या का नाम है– न्यायविद्या या न्यायशास्त्र |

उपरोक्त श्लोकों एवं सन्दर्भों से स्पष्ट है कि शिक्षा के महत्त्व को सभी प्राचीन ग्रंथों में न केवल स्वीकार किया गया है, अपितु उसका प्रतिपादन भी किया है | तैतरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली, ब्रह्मानंद वल्ली और भृगुवल्ली में शिक्षा के बारे में विशद वर्णनहै | शिक्षा सम्बन्धी जटिलताओं के समस्त समाधान शिक्षावल्ली के ग्यारहवें अनुवाक में मिलता है | तैतरीय उपनिषद्में समापवर्तन संस्कार के समय दीक्षांत भाषण का उल्लेख है, जो कि आज भी विभिन्न विश्वविद्यालयों के दीक्षांत समारोहों का प्राण तत्व है | उल्लेख है ***–सत्यम वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः.....स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम न प्रमदितव्यम |*** **{तैतरीय उपनिषद्(शिक्षावल्ली–** 11 . 1) }

आज आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा के मूल तत्वों का समावेश आधुनिक शिक्षा में कर मानव कल्याण हेतु मार्ग प्रशस्त किया जाय | वैदिक एवं लौकिक साहित्य को आधुनिक पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर शिक्षा के सभी स्तरों पर इनका सम्यक अध्ययन एवं अध्यापन प्रारंभ किया जाए | तकनीकी पाठ्यक्रमों में भी भारतीय ज्ञान विज्ञान से ओतप्रोत श्लोकों, वैदिक शिक्षा मन्त्रों, नीतिशतकम, हितोपदेश, पंचतंत्र एवं उपनिषदों में सन्निहित ज्ञान को विद्यार्थियों के सम्मुख रखा जाय | जिससे वे अपनी संस्कृति को आगे ले जाने में समृद्ध हो सकें और गुणी, विनम्र, सच्चे, साहसी, त्यागी, कुशल युवा देश को प्राप्त हो सकें |

सन्दर्भ –

1– अल्तेकर, ए०, एस०,(1944):एजुकेशन इन ऐन्सिएन्ट इंडिया, पृष्ठ 1–2,नन्द किशोर एंड ब्रदर्स, बनारस| |

2– भर्तृहरि (2012): नीतिशतकम श्लोक संख्या 17, पृष्ठ– 29 |

3– तदैव

4– ऋग्वेद ; 6/4/4/4/

5– ईशोपनिषद: 14

6– मनुस्मृति: 12– 140

7– मुण्डकोपनिषद (संवत 2072). ईशादि नौ उपनिषद: बारहवां पुनर्मुद्रित संस्करण. श्लोक, 1, 1, 3,गोरखपुर: गीता प्रेस. पृ. सं.457–463.

8– तदैव,1, 1, 4

9– कुमार, उज्जवल (2016). ए नोट ओन पाली नीति लिटरेचर. *इन्टरनेशनल जौर्नल ऑफ संस्कृत रिसर्च. 2*(3), 12–21 http://www.anantaajournal.com/archives/2016/vol2issue3/PartA/2-3-1.1.pdf

10– केनोपनिषद 2 , 4

11– *तैतरीयोपनिषद्: 1,2,11*

12– वृहदारण्यक उपनिषद् (2005): युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि,श्लोक 1.3.28,मथुरा, पृष्ठ 250|

13– रामचरितमानस, 3.20.9

14– चतुर्वेदी, सीताराम (1997): कालिदास ग्रंथावली, लखनऊ,उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, पृष्ठ– 10

15– द्विवेदी, प्रभुनाथ (2008): हितोपदेश– मित्रलाभः, मेरठ, साहित्य भंडार,पृष्ठ– 15